महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

आओ, हम चारित्र के पथ पर चलें

हे माता! मैंने अपने शुद्धात्मस्वरूप की अनुभूति की है, अब उस स्वरूप की सिद्धि के लिये, मैं अपने चैतन्यधाम में जाकर उसी में स्थित होना चाहता हूँ; इसलिये हे माता! अब मैं इस मोह को छोड़कर शुद्धोपयोगी चारित्रदशा अंगीकार करने जाता हूँ, तुम मुझे आनंद से स्वीकृति दो। ज्ञानी पुत्र अपनी माता से इसप्रकार वैराग्यपूर्वक आज्ञा माँगते हों, वह प्रसंग कैसा अद्भुत होगा! अहा, धन्य अवसर! जिसे अपना हित करना हो, उसे मार्ग पर जाना होगा। अहा, मोक्ष का ऐसा प्रसिद्ध वीतरागी मार्ग संतों ने इस पंचमकाल में भी प्रकाशित किया है। आचार्यदेव प्रवचनसार में कहते हैं कि— शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र के द्वारा अपने आत्मा को हमने भवदुःख से मुक्त किया है, उसीप्रकार जो आत्मा इस भवदुःख से छूटना चाहते हों, और जिन्हें चैतन्य की परम वीतरागी शांति की इच्छा हो, वे भी ऐसे चारित्र को अंगीकार करो; यह मार्ग हमारा देखा हुआ है—अनुभूत है और इस मार्ग के प्रणेता हम विद्यमान हैं। अहा, आचार्यदेव मानों हमारे सन्मुख ही विराजमान हों और हमें चारित्र दे रहे हों—ऐसे अलौकिक ढंग से चारित्र का वर्णन किया है।

वाह! धन्य है चारित्रदशा को! वह धर्मात्मा जीवों का मनोरथ है।

चलो चलें, हम चारित्र के पंथ पर... मोक्ष के मार्ग पर...

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2500 अषाढ़ (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 3

प्रिय साधर्मी बन्धुओं! वीरनाथ भगवान के मोक्षगमन का यह 2500 वाँ वर्ष चल रहा है। दीपावली को भगवान के मोक्षगमन का 2500 वाँ वर्ष पूर्ण होगा और समस्त जैन समाज महान जागृतिपूर्वक यह मंगल-महोत्सव भारतभर में एक वर्ष तक मनायेगा। प्रभु के मोक्ष के 2500 वें वर्ष की पूर्णता का ऐसा भव्य उत्सव हम सबको अपने जीवन में मनाने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ—यह अपना सौभाग्य है। इस अवसर पर हमें ऐसे कार्य करना चाहिये जिनसे वीरशासन सुशोभित हो उठे और देव-गुरु-धर्म की सेवापूर्वक आत्महित का महान लाभ प्राप्त हो।

सौभाग्य से मुझे गुरुदेव के चरणों में रहने, और ऐसे अनेक धन्य अवसर देखने का लाभ प्राप्त हुआ है। स्वामीजी के चरणों में रहते हुए मुझे 31 वर्ष हो चुके हैं। इतने वर्षों से आत्मधर्म के लेखन-संपादन द्वारा जिनवाणी की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैंने अपनी संपूर्ण हार्दिक भावना से स्वामीजी के भावों को ग्रहण करके यह कार्य 31 वर्ष तक किया है। साधर्मी पाठकों की ओर से भी मुझे स्नेह और सहयोग मिला है। आज मैं अपने साधर्मी पाठकों के प्रति गद्‌गद् हृदय से लिखता है कि अब पूज्य स्वामीजी के चरणों में रहकर विशेष निवृत्ति के लिये मेरी भावना है। इसलिये अब 'आत्मधर्म'—मासिक के उत्तरदायित्व से मैं निवृत्त होऊँ और अन्य कोई उत्साही सज्जन यह कार्य सम्हालें—ऐसी मेरी भावना है। जो सोनगढ़ में स्थायीरूप से रह सकें, स्वामीजी जो अपूर्व अध्यात्मतत्त्व समझाते हैं, वह समझ सकें, और स्वामीजी के प्रवचनों का लेखन तथा आत्मधर्म का संपादन कार्य कर सकें, ऐसे कोई साहित्यकार और तत्त्वप्रेमी उत्साही जैन बन्धु यह कार्य उल्लासपूर्वक सम्हालने के लिये तैयार हों तो आनंद होगा। उत्साही बन्धुओं, आगे आओ... और धर्मप्रचार के इस महान कार्य में हिस्सा लो। भावपूर्वक निरंतर जिनवाणी की सेवा से अवश्य तुम्हें महान लाभ होगा। जिनवाणी की ऐसी सेवा का सुअवसर महाभाग्य से प्राप्त होता है। जो भाई यह कार्य करने के लिये तैयार हों, उन्हें मैं छह महीने तक लेखनकार्य में पूर्ण सहयोग दूँगा। अत: जिनकी भावना हो, वे संस्था के अध्यक्ष से संपर्क स्थापित करें। [ब्रह्मचारी हरिलाल जैन-संपादक]

वीर सं. 2500
अषाढ़
जुलाई 1974

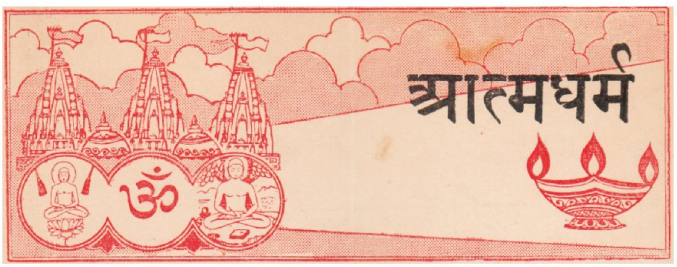

वर्ष 30 वाँ
अंक 3
[351]

जैन अर्थात् जिनदेव का उपासक, वह कुदेव का सेवन कभी नहीं करता

धर्मी जीव वीतराग सर्वज्ञदेव और उनके द्वारा कहे हुए जैनमार्ग की ही उपासना करता है; कुदेवादि की उपासना स्वप्न में भी नहीं करता। अरे भाई! जैन होकर तू अपने भगवान को भी न जाने और अन्य को माने तो तू जैन कैसा? जैन अपने सर्वज्ञ-वीतराग-अरिहंत और सिद्ध भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य को सिर कट जाये, तब भी देवरूप नहीं मानता। जिन्हें अपने हित-अहित का विचार नहीं, स्व-पर की भिन्नता का भान नहीं, सर्वज्ञदेव और कुदेव के वचनों का विवेक नहीं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव स्वयं अंधे हैं, उन्होंने सच्चा मार्ग नहीं जाना तो वे दूसरों को सच्चा मार्ग कैसे बतला सकते हैं? और ऐसे अंध का अनुकरण करनेवाले जीव सच्चा मार्ग कहाँ से प्राप्त करेंगे? जिसने स्वयं कभी मार्ग नहीं देखा है, ऐसा अंधा दूसरे अंधे से कहे कि तू इस मार्ग में आ। उसीप्रकार मिथ्यादृष्टि जीव—कि जिसने कभी आत्मा नहीं जाना, मोक्षमार्ग नहीं देखा, जिसके सम्यग्ज्ञानचक्षु नहीं खुले हैं, ऐसे अंध जीव द्वारा बतलाये गये मार्ग से अज्ञानी मोक्ष का मार्ग किस-किसप्रकार प्राप्त करेंगे? राग से धर्म मनाये, शरीर की जड़क्रिया को आत्मा की मनाये—यह सब बातें तो अंधे द्वारा बतलाये हुए मार्ग समान मिथ्या है, और वे संसाररूपी कुएँ में गिरानेवाली हैं। जो सर्वज्ञ परमात्मा को नहीं जानते; आत्मा क्या है, वह नहीं जानते—ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा बतलाये गये कुमार्ग को हे भव्य! तू नहीं मानना, उस मार्ग पर नहीं जाना। सर्वज्ञ के मार्ग को जानकर भक्ति से उसका सेवन करना। सर्वज्ञदेव के मार्ग को बराबर जानकर स्व-पर का विवेक करना, और स्वतत्त्व का परिचय तथा अनुभव करना, वह प्रत्येक जैन-श्रावक का कर्तव्य है।

बंध-मोक्ष के कारण का एक ही नियम

एक ही जीव को एक ही समय में ज्ञानधारा और कर्मधारा;—दोनों धाराएँ एकसाथ होने पर भी उन्हें कर्ता-कर्मपना नहीं है; शुद्ध ज्ञानधारा सर्व जीवों को मोक्ष का ही कारण होती है और रागधारा सर्व जीवों को बंध का ही कारण होती है। बंध-मोक्ष का यह नियम समस्त जीवों के लिये एक समान है।

ज्ञानी की दशा के संबंध में और बंध-मोक्ष के कारण के संबंध में सामान्यरूप से जीव दो प्रकार की भूल करते हैं

— एक तो ऐसा मानते हैं कि ज्ञानी को शुभाशुभराग सर्वथा नहीं होता।

— और दूसरे ऐसा मानते हैं कि ज्ञानी को जो शुभराग होता है, वह मोक्ष का कारण होता है

— यह दोनों मान्यताएँ भूलयुक्त हैं; और ऐसी मान्यतावाले जीव ने ज्ञानी की दशा को नहीं पहिचाना है, तथा ज्ञानधारा और रागधारा दोनों की अत्यंत भिन्नता को तथा उनके अत्यंत भिन्न फल को भी उसने नहीं जाना है, यह पहिचान अत्यंत महत्व की है और वह जीव को अपूर्व भेदज्ञान का कारण होती है। इसलिये तत्संबंधी सुंदर स्पष्टीकरण जो कलश-टीका के 110वें कलश में किया है, वह यहाँ दिया जा रहा है। यह उपयोगी विषय मुमुक्षुओं को लक्षगत करने योग्य है। [-संपादक]

[समयसार-कलश 110 के प्रवचन से]

सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी को श्रद्धा-ज्ञानादि का जो शुद्ध परिणमन है, वह तो मोक्ष का कारण है; और उसके साथ जितनी शुभाशुभ-राग की क्रियाएँ हैं, वे सब बंध का ही कारण होती हैं।

टीकाकार ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता बतलाकर शुभराग को भी मोक्षमार्ग से

विरुद्ध कार्य करनेवाला बतलाते हैं। भाई! तू राग को मोक्षमार्ग मानेगा तो तुझे भ्रांति होगी। शुभराग भले ही ज्ञानी का हो, तथापि वह बंध का ही कारण है; मोक्ष का कारण नहीं।

अज्ञानी का शुभराग भले बंध का कारण हो, परंतु ज्ञानी का शुभराग तो मोक्ष का कारण होता होगा?—ऐसा कोई माने तो वह भ्रांति है। भाई, बंध-मोक्ष के कारण का सिद्धांत तो सर्व जीवों के लिये समान होता है। एक जीव को जो बंध का कारण हो—वह सब जीवों को बंध का कारण होता है; एक जीव को जो मोक्ष का कारण हो—वह सब जीवों को मोक्ष का कारण होता है। एक ही भाव किसी को बंध का कारण हो और किसी को मोक्ष का कारण हो-ऐसा नहीं हो सकता। बंध-मोक्ष का नियम सर्व जीवों को एक ही समान होता है।

अनेक जीव ऐसी भ्रांति करते हैं कि मिथ्यादृष्टि का जो यतिपना शुभक्रियारूप है, वह तो बंध का कारण है, परंतु सम्यग्दृष्टि का जो यतिपना शुभक्रियारूप है, वह तो मोक्ष का कारण है—क्योंकि अनुभव-ज्ञान तथा दया-व्रत-तप-संयमरूप शुभक्रिया—वे दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षय करती हैं।—ऐसी प्रतीति कुछ अज्ञानी जीव करते हैं।

यहाँ आचार्यदेव समझाते हैं कि हे भाई! जितनी शुभ-अशुभ क्रियाएँ हैं, वे सब बंध का ही कारण हैं—ऐसा ही उनका स्वभाव है; उसमें कहीं मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का भेद नहीं है; अर्थात् मिथ्यादृष्टि को तो वह बंध का कारण हो और सम्यग्दृष्टि को वह मोक्ष का कारण हो—ऐसा कोई अंतर नहीं है। सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो—दोनों की जितनी शुभाशुभ करनी है, वह तो बंध का ही कारण है; मोक्ष का कारण तो मात्र शुद्ध स्वरूपपरिणमन ही है। अब सम्यग्दृष्टि की विशेषता इतनी है कि उसे शुभाशुभपरिणाम की क्रिया के समय ही भेदज्ञान द्वारा शुद्धात्मा के संचेतनरूप शुद्धपरिणमन भी वर्तता है, वह किंचित् बंध का कारण नहीं होता; और उसी समय उसे जो शुभाशुभभावरूप अशुद्धपरिणमन है, वह बंध का कारण होता है।—इसप्रकार धर्मी को दोनों धाराएँ एक साथ वर्तती हैं। दोनों के साथ होने में विरोध नहीं है, परंतु दोनों के कार्य बिल्कुल भिन्न हैं। उस भिन्नता को अज्ञानी नहीं जानता, इसलिये वह बंध के कारण को मोक्ष का कारण मानकर उसकी सेवा करता है।

ज्ञानी बंध के कारण को बंध का कारण जानता है, और मोक्ष के कारण को मोक्ष का कारण जानता है; उन दोनों को एक-दूसरे से किंचित् एकमेक नहीं करता। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

में अमृतचंद्रस्वामी ने (गाथा 212-213-214 में) यह बात अत्यंत स्पष्ट समझायी है कि इस आत्मा को जिस अंश से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उस अंश से बंधन नहीं होता; और जिस अंश से राग है, उस अंश से बंधन होता है।

येनांशेन सुदृष्टिः तेन अंशेन अस्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागः तेन अंशेन अस्य बंधनं भवति॥

[इसप्रकार सुदृष्टि की भाँति ज्ञान और चारित्र की गाथाएँ भी समझ लेना]

सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धज्ञान और रागादि क्रियाएँ दोनों एक साथ हैं। अज्ञानी पूछता है कि यदि शुभक्रिया भी मोक्ष का कारण नहीं है, मात्र बंध का ही कारण है, तो फिर किसका सहारा रहा? उसका स्पष्टीकरण यह है कि—हे भाई! ज्ञानी की दशा की तुझे खबर नहीं है। जिस समय शुभाशुभ रागक्रिया वर्तती है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को शुद्धस्वरूप के अनुभव का ज्ञान भी वर्तता है, और उस शुद्धज्ञान का ही सहारा है, वही मोक्ष का कारण होता है। जिस काल राग है, उसी काल शुद्धज्ञान से धर्मी को कर्मों का क्षय होता है।

अहा, देखो यह ज्ञानी की अद्भुत दशा! एक ओर बंधन होता है, और दूसरी ओर उसी समय मोक्ष भी होता जाता है। धर्मी की ऐसी आश्चर्यकारी दशा है। वीतरागता और केवलज्ञान न हो, तब तक साधकदशा में रागादि क्रिया के परिणाम तथा आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आनंद के शुद्ध परिणाम—उन दोनों का एक ही काल में एक ही पर्याय में अस्तित्व है, एक पर्याय में दोनों साथ रहने में विरोध नहीं है; राग के साथ रहे, इससे ज्ञान नहीं अज्ञानरूप या रागरूप नहीं हो जाता; और ज्ञान के साथ शुभराग रहे, इससे कहीं वह राग मोक्ष का साधक नहीं हो जाता। ज्ञानी को एक ही समय में ज्ञान की शांति का और रागादि की अशांति का वेदन वर्तता है।—साधकदशा में साधकभाव और बाधकभाव दोनों एक साथ होने से इस बात में कोई विरोध नहीं है। एक जीव में एक काल में दोनों धाराओं का अस्तित्व होने पर भी दोनों का स्वरूप बिल्कुल भिन्न; एक मोक्ष की क्रिया और दूसरी बंध की क्रिया—इसे ज्ञानी ही जान सकता है। ज्ञानी की ऐसी दशा को यथार्थरूप से जाने, उसे ज्ञान और राग का भेदज्ञान अवश्य होता है।

ज्ञान और राग यद्यपि एक-दूसरे से विरुद्ध स्वभाववाले हैं, ज्ञान में राग नहीं और राग में ज्ञान नहीं—इसप्रकार दोनों एक-दूसरे के बिलकुल विरोधी होने पर भी दोनों एक स्थान में साथ रहने का विरोध नहीं करते, दोनों अपने-अपने स्वरूप में रहते हैं, दोनों के स्वरूप में

विरोध है, परंतु सहअस्तित्व में विरोध नहीं है। कुछ काल (अर्थात् साधकदशा हो तब तक) वे दोनों साथ रह सकते हैं।

यद्यपि शुद्ध ज्ञानधारा और रागधारा दोनों का फल एक-दूसरे से विरुद्ध है; ज्ञानधारा का फल मोक्ष है, और रागधारा का फल बंधन है;—इसप्रकार स्वरूप से दोनों में विपरीतता है, तथापि शुद्ध ज्ञान और रागादि को एक जीव में एकसाथ रहने पर कोई विरोध नहीं है; जाति भिन्न होने पर भी दोनों एकसाथ रह सकते हैं। जैसे कि—चौथे गुणस्थान में क्षायिकसम्यक्त्वरूप ज्ञानधारा वर्तती हो और उसी समय उसी जीव को अव्रतादिरूप रागधारा भी वर्तती हो, वहाँ वह रागधारा कहीं क्षायिकसम्यक्त्व का नाश नहीं करती; उसीप्रकार वह रागधारा कहीं मोक्ष का कारण नहीं होती। मोक्ष का कारण तो ज्ञानधारा है, वह बंध का किंचित् कारण नहीं है; और रागधारा बंध का कारण है, वह मोक्ष का किंचित् कारण नहीं होती। एकसाथ होने पर भी दोनों धाराएँ अपने-अपने स्वरूप में रहती हैं, एक-दूसरे में मिलती नहीं हैं।

अहा, आचार्य भगवान ने ज्ञानधारा और रागधारा का (मोक्षकारण और बंधकारण का) कैसा स्पष्ट भेदज्ञान कराया है! इसप्रकार जाने तो मोक्षमार्ग में कोई भ्रम न रहे। उसे भेदज्ञान हो और अपने में चैतन्यभाव को रागादि से अत्यंत भिन्न अनुभवता हुआ वह जीव मोक्षमार्ग में चला जाये।

इसप्रकार ज्ञानी को शुभाशुभराग में दु:ख का वेदन सर्वथा न हो—ऐसा एकांत नहीं है; ज्ञानी को जितना राग है, उतना तो दु:ख का ही वेदन है और वह तो बंध का कारण है—परंतु उसी समय ज्ञानी को ज्ञान के अनुभवरूप जो शुद्ध ज्ञानधारा वर्तती है, उसमें शांति का ही वेदन है। उस ज्ञानधारा की शांति को राग नष्ट नहीं करता, वह ज्ञानधारा राग के वेदन रहित है। जितनी ज्ञानधारा है, वह तो आनंदरूप है, उसमें दु:ख या राग का वेदन नहीं है। इसप्रकार साधक जीव के उस काल राग और ज्ञान एकसाथ रहने में विरोध नहीं है; परंतु उसमें ज्ञान राग को करे, या राग ज्ञान को करे—ऐसा कर्ता-कर्मपना नहीं है, भिन्नपना ही है—काल से या क्षेत्र से भिन्न नहीं परंतु भाव से भिन्न है, स्वरूप से भिन्न है। ऐसा भिन्न स्वरूप जानकर राग के कर्तृत्व से छूटकर ज्ञान अपने सहज ज्ञानस्वरूप में परिणमित होता हुआ और शांतरस का वेदन करता हुआ मोक्ष को साधता है।

शांतरस का वेदन करनेवाली ज्ञानधारा जयवंत वर्तो!

देव-गुरु-शास्त्र की सम्यक् उपासना ज्ञान द्वारा होती है, राग द्वारा नहीं

देव-पूजा, गुरु-उपासना और शास्त्रस्वाध्याय आदि श्रावक के प्रतिदिन के कर्तव्य हैं; परंतु देव कैसे होते हैं और उनके द्वारा कहा हुआ आत्मस्वरूप कैसा है ? गुरु कैसे होते हैं और वे कैसे भाव द्वारा आत्मा को साधते हैं ? और शास्त्रों ने आत्मा का स्वरूप तथा मोक्ष का मार्ग कैसा बतलाया है ? उसकी पहिचान करे, तभी देव-गुरु-शास्त्र की सम्यक् उपासना होती है, जाने बिना केवल शुभराग से देव-गुरु-शास्त्र की उपासना का सच्चा फल नहीं आता। अहा, सर्वज्ञदेव किन्हें कहते हैं ? उन्हें पहिचानने पर तो आत्मा के परमार्थस्वरूप की प्रतीति होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। परंतु ऐसी पहिचान शुभराग द्वारा नहीं होती; ज्ञान द्वारा ही होती है। उस ज्ञान और राग का कार्य अत्यंत भिन्न-भिन्न है। 'राग द्वारा जो अरिहंत को पूजता है, वह आत्मा को जानता है'—ऐसा नहीं कहा, परंतु 'ज्ञान द्वारा जो अरिहंत को जानता है, वह आत्मा को जानता है और उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है'—ऐसा कुन्दकुन्दस्वामी ने कहा है।

अरिहंत के प्रति पूजादि शुभराग, वह तो पुण्यबंध का कारण है, उस राग द्वारा कहीं आत्मा जानने में नहीं आता, या उससे भव का अंत नहीं आता; परंतु राग से परे ऐसे अरिहंत के आत्मा के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय का सच्चा ज्ञान करने पर, राग और ज्ञान का भेदज्ञान हो जाता है और आत्मा का सच्चा स्वरूप जानने में आता है; उस ज्ञान से भव का अंत आता है। धर्मी को भी पूजादि का शुभराग होता है परंतु उसकी जितनी सीमा है, उतनी वह जानता है।

अहा, जिन भगवंतों ने, जिन गुरुओं ने ऐसा मेरा स्वरूप मुझे समझाया, अनंतकाल के घोर अज्ञानदु:ख से मुझे छुड़ाया और मुक्त होने का मार्ग बतलाया, उन भगवंतों और उन गुरुओं के उपकार की क्या बात ! उनका जितना बहुमान करें, उतना कम है।

अहा, श्रीगुरु ने आत्मा का स्वरूप बतलाकर महान उपकार किया है; उस आत्मा के साथ जिसकी तुलना की जा सके, ऐसी कोई वस्तु संसार में नहीं है, कि जिसके द्वारा मैं गुरु के

उपकार का बदला दूँ। इसप्रकार देव-गुरु के प्रति ओर उनकी वीतरागवाणी के प्रति धर्मी के मन में अत्यंत बहुमान वर्तता है।

—इसप्रकार श्रावक की भूमिका में प्रतिदिन देव-गुरु-शास्त्र की उपासना, स्वाध्याय, ज्ञान आदि का भाव आता है; उसमें जो शुभराग है, वह तो स्वर्ग का कारण है, वह श्रावक का व्यवहार-आचार है; और अंतर में सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह उसका परमार्थ-आचार है, वह मोक्ष का कारण है।

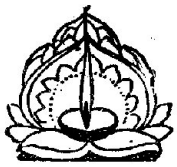

सुख के खोजी को

- मुमुक्षु को स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा और अंतरज्ञान द्वारा सूक्ष्म भेदज्ञान द्वारा तत्त्व की परीक्षा करके आत्मा का सच्चा स्वरूप जानना चाहिये।
- आत्मा को अपना अनुभव करने के लिये अंतर में एकाग्र होना पड़ता है, बाह्य में नहीं देखना पड़ता। बाह्य में एकाग्रता द्वारा आत्मा का पता नहीं चलता; अंतर में एकाग्रता द्वारा ही आत्मा का पता लगता है।
- जहाँ आत्मा है, वहीं आत्मा का सुख है। आत्मा का सुख आत्मा से बाहर अन्यत्र कहीं नहीं है, हे जीव! सुख अंतर में है, बाह्य में नहीं। बाह्य में न खोज! आंतरिक सुख प्राप्त करने के लिये बाह्य पदार्थों का आश्चर्य भूल और चैतन्य की अद्भुतता को जान! अपने आत्मा की अचिंत्य महिमा ज्ञान में आने पर उसका सुख भी तुझे अपने में अनुभवगम्य होगा।

ज्ञान वह गुण है : पुण्य-राग वह दोष है

[संवर-निर्जरा] --- [आस्रव-बंध]

इससे न करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को

अरे जीव! ज्ञान तो तेरा गुण है और पुण्य-राग तेरा दोष है। ज्ञानगुण में पुण्य का राग नहीं समाता। जिसप्रकार आँख में कण नहीं समाता, उसीप्रकार तेरे ज्ञानचक्षु में राग के किसी भी कण का समावेश नहीं हो सकता। जिसे पुण्य-राग का उत्साह है, उसे चैतन्यगुण का उत्साह नहीं है, परंतु दोष का उत्साह है। भाई, आत्मा का पवित्रस्वभाव रागरहित शुद्ध है, उसका तू उत्साह कर। यह तो जिनदेव का वीतरागमार्ग है! उसमें राग की मिलावट नहीं चलती। वीतरागमार्ग में राग को चलाने की बात जैनशासन में नहीं चलती। ज्ञानभाव राग के किसी भी कण को नहीं रखता अर्थात् अपने में स्वीकार नहीं करता। ज्ञान, वह तो संवर-निर्जरा है और राग, आस्रव-बंध है। अज्ञानी किंचित् शुभराग करे, वहाँ उसमें प्रसन्न और उत्साहित होकर ऐसा मानता है कि मैं धर्म में बहुत आगे बढ़ गया हूँ। वह शुभराग को उत्तम कार्य मान लेता है, परंतु राग रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव—जो कि वास्तव में सुंदर और उत्तम कार्य है—उसे वह नहीं जानता, उल्टा उस पर अरुचि करता है। भाई! मोक्ष के लिये सर्वोत्तम कार्य तो ज्ञान का अनुभव है, उसमें वीतरागता है और वह मोक्ष का कारण है। राग मोक्ष के लिये उत्तम कार्य नहीं—वह कर्तव्य नहीं, राग तो संसार का कारण है—

'इससे न करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को,
वीतराग होकर इस तरह वह भव्य भवसागर तरे।'

(पंचास्तिकाय, गाथा-172)

—इसलिये हे भव्य मुमुक्षु! तू ज्ञान का उत्साह कर और राग का उत्साह छोड़।

———

गुण और दोष

सम्यग्दर्शन वह तो आत्मगुण है, शुभरागादिभाव वह कोई आत्मगुण नहीं हैं, वह तो दोष है। सम्यक्त्वादि गुणों में उसका अभाव है।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के परिणाम में महान अंतर

धर्मी के शुद्ध चैतन्यपरिणाम में रागादि का कर्तृत्व है ही नहीं; अज्ञानी रागादिरूप ही अपना अनुभव करता हुआ उसका कर्ता होता है।

ज्ञानी और अज्ञानी के परिणाम में ऐसा जो बड़ा भेद है, उस भेद को जानने पर अपूर्व भेदज्ञान होता है... और वह जीव रागादि अशुद्ध भावों का कर्तृत्व छोड़कर, शुद्ध ज्ञानपरिणमन द्वारा मोक्षमार्ग को साधता है। यह बात इस समयसार के 85-86-87 वें कलशों में आचार्यदेव ने सुंदर रीति से समझायी है। वह प्रवचन आप यहाँ पढ़ेंगे। [—संपादक]

आत्मा का चैतन्यस्वभाव रागरहित होने पर भी जो उसे रागसहित अनुभवता है, उस जीव को विकल्प का अर्थात् अशुद्ध रागादि भावों का कर्ता-कर्मपना कभी नहीं मिटता। ज्ञानस्वरूप आत्मा कर्ता और विकल्प उसका कर्म—इसप्रकार अशुद्ध रागादिभावों के साथ अज्ञानी को कर्ता-कर्मपना है। जिसे राग से भिन्न चैतन्यभाव की प्रतीति नहीं, वेदन नहीं और चैतन्य से विरुद्ध रागादि अशुद्धभावरूप स्वयं को अनुभवता है, उस जीव को अशुद्ध भावों का कर्तापना है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव ही उस रागादि अशुद्धता का कर्ता है, ज्ञानभाव में रागादि का कर्तापना नहीं है; और उस मिथ्यादृष्टि का जो अशुद्धभाव है, वही उसका कर्म है, अन्य कोई (शरीरादि की क्रिया आदि) उसका कर्म नहीं है। यह कर्ता-कर्म की मर्यादा है। जड़ के साथ तो कर्ता-कर्मपना किसी जीव को नहीं है। अज्ञानी को अपने अशुद्धभाव के साथ कर्ता-कर्मपना है; और सम्यक् अनुभव होने पर धर्मी को उस अशुद्धता का कर्ता-कर्मपना छूट जाता है। इसप्रकार संक्षेप में आचार्यदेव ने सारी बात समझा दी है।

जिसमें अपनत्व माने उसका कर्तापना क्यों छोड़ेगा ? शुभ-अशुभ रागादि अशुद्धभावों को अज्ञानी अपनेरूप जानता है, इसलिये उसे किसी काल उनका कर्तापना नहीं छूटता। चैतन्यस्वरूप अपनेरूप है और राग उसमें नहीं है।—इसप्रकार राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप को जो नहीं जानता, और रागादिभावों को चैतन्यस्वरूप में मिलाता है—ऐसे सविकल्प जीव को (अर्थात् विकल्परूप ही आत्मा को अनुभवनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव को) अशुद्धभावों का कर्ता-कर्मपना सदैव रहता है, कभी नहीं मिटता। जीव अपना मानकर जिस भावरूप परिणमित हुआ, उस भाव का वह कर्ता अवश्य होता है। अज्ञान से होनेवाला यह कर्ताकर्मपना कब मिटे ? कि ज्ञान के अनुभव से सम्यक्त्व प्रगट हो, तब उसमें अशुद्धभावों का कर्तृत्व नहीं रहता। ज्ञानभाव में रागादि अशुद्धता का कर्तृत्व कैसे हो ?

अरे, पर के कर्तृत्व की तो यहाँ बात ही नहीं; यहाँ तो आत्मा में रागादि अशुद्धभाव का कर्तापना भी मिथ्यादृष्टि को ही है, सम्यग्दर्शन होने पर उन अशुद्धभावों का कर्तापना भी छूट जाता है।

ज्ञान और रागादि में परस्पर विरोध है। पुण्य, वह धर्म नहीं परंतु धर्म से विरुद्ध है। इसके लिये शास्त्राधारपूर्वक 113 बोल पहले 'आत्मधर्म' में दिये जा चुके हैं।

जो पुण्य-राग को अपनेरूप माने और उससे अपना हित माने, वह उसके कर्तृत्व को कैसे छोड़ेगा ? भाई! राग तो आस्रव है, अशांति है, अशुद्धता है, अशुचिरूप है, स्व-पर के ज्ञानरहित जड़स्वभावी है, और भगवान आत्मा कर्म के संबंधरहित, शांत पवित्र, आकुलता रहित, एवं स्व-पर का जाननेवाला है। इसप्रकार दोनों की अत्यंत भिन्नता है। अहा, चैतन्य की जाति राग से सर्वथा भिन्न बतलाकर अमृतचंद्राचार्यदेव ने अमृत पिलाया है। ऐसा भेदज्ञान करे, तभी विकल्प का कर्तृत्व छूटता है और निर्विकल्प शांत चैतन्यरस अनुभव में आता है। उसके ज्ञानभाव में विकल्प के किसी अंश का कर्तृत्व नहीं रहता।

रागादि अशुद्धभाव का कर्ता कौन है ?—कि जो उसे अपना स्वरूप मानता है, वही उसका कर्ता होता है, अर्थात् अज्ञानी ही उसका कर्ता होता है। ज्ञानभाव में राग नहीं है। जो राग से रहित है, उसे राग सहित मानना, वह मिथ्यात्व है; और राग में ज्ञान नहीं है, ज्ञान में राग नहीं है—ऐसा पृथक्त्व जानकर भेदज्ञान करनेवाला ज्ञानी अपने को ज्ञाननरूप अनुभवता है, वह राग को अपने स्वरूप नहीं अनुभवता अर्थात् वह उसका कर्ता नहीं होता।

भाई! चैतन्यतत्त्व को राग का कार्य सौंपना, वह तो हानि का व्यापार है। चैतन्यतत्त्व में तो वीतरागी शांति का कार्य हो—ऐसा उसका स्वभाव है, उसके बदले तूने उसे शुभाशुभराग का कार्य सौंपा, उसमें तूने अपने चैतन्य की हिंसा की है। जिसने आत्मा को रागयुक्त माना, उसने राग का कर्ता होकर चैतन्यभाव का घात किया है। राग तो उपाधिरूप है, वह कहीं चैतन्य का गुण नहीं; चैतन्यगुण को भूलकर अज्ञानी अशुद्धभाव करता है; वह जड़ को नहीं करता या शुद्धभाव को भी नहीं अनुभवता। वह मात्र अपने अशुद्ध भाव का ही कर्ता होकर उसरूप परिणमित होता है। जिसप्रकार असली और नकली माल की मिलावट अपराध और काला बाजार है, उसीप्रकार आत्मा में शुद्ध चैतन्य और अशुद्ध रागादि को मिलाकर अज्ञानी अपराध करता है, वह अपने को अशुद्ध ही अनुभव करता हुआ संसार में भटकता है।—ऐसे अज्ञानभाव में रागादि अशुद्धभाव का कर्तापना है—ऐसा बतलाकर उसे छुड़ाने की यह बात है। भाई! ज्ञान में राग की मिलावट का बुरा व्यापार तू छोड़ दे। ज्ञान और राग को भिन्न जानकर विकल्पों का कर्तृत्व छोड़ दे। आतमराम में राग को हराम समझ। राग वह आतमराम की जाति नहीं परंतु हराम की जाति है, कर्म की जाति है।—इसलिये उसे भिन्न जानकर उसका कर्तृत्व छोड़। जिसमें जो तन्मय होता है, जिसमें जिसे सुख लगता है, उसका वह कर्ता होता है। राग का जो कर्ता होता है, वह उसमें तन्मय होकर मिथ्यात्वरूप परिणमित होता है। शांति और अनाकुल आनंद से भरपूर चैतन्यतत्त्व उसकी दृष्टि में-अनुभूति में नहीं आता, इसलिये वह रागादि अशांत भावों का कर्ता होता है।

शांत-अनाकुल चैतन्यतत्त्व, और रागादि अशांत भाव, इन दोनों में एकता नहीं किंतु भिन्नता है; नहीं तो चैतन्यतत्त्व और आस्रवतत्त्व एक हो जाये। जिसप्रकार चैतन्य में जड़ का अभाव है, तथापि उसकी जड़ के साथ एकता मानना अथवा जड़ के साथ कर्ता-कर्मपना मानना, वह अज्ञान है; उसीप्रकार चैतन्यभाव में राग का अभाव है, तथापि उसकी राग के साथ एकता मानना या राग के साथ कर्ता-कर्मपना मानना वह अज्ञानता है। और ऐसा अज्ञानी जीव मिथ्यात्व-रागादि अशुद्ध परिणामरूप परिणमित होता हुआ उसका कर्ता होता है। और धर्मी जीव राग से भिन्न अपने ज्ञानस्वभाव को शुद्ध अनुभवता हुआ अपने शुद्ध सम्यक्त्वादि ज्ञानभाव का ही कर्ता होता है, परंतु रागादि अशुद्ध भावों का कर्ता नहीं होता।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव और मिथ्यादृष्टि जीव के बीच परिणामों का बड़ा अंतर है।—इस अंतर को ज्ञानी ही जानता है। चैतन्य जात और राग कुजात—उन दोनों में एकता कैसे हो? धर्मी जीव चैतन्यजाति के परिणामरूप ही अपने को अनुभवता हुआ उसका कर्ता होता है। अज्ञानी चैतन्यरस को न जानता हुआ कुजात—ऐसे रागादि अशुद्धभावोंरूप ही अपने को अनुभवता हुआ उन्हीं का कर्ता होता है। इसलिये अज्ञानी तो कर्ता है और धर्मी ज्ञाता है, वह रागादि का कर्ता नहीं है—

'करे करम सोही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।'

शुभ और अशुभभाव, वह कर्म है। उसका कर्ता अज्ञानी है। वह शुभाशुभ से भिन्न ज्ञान को नहीं जानता।

और जो शुभाशुभराग से भिन्न ज्ञान को जानता है, वह रागादि को जानता है, परंतु उसका कर्ता नहीं होता:—

कर्ता सो ज्ञाता नहीं कोई, जाने सो करता नहीं होई।

देखो, यह ज्ञानी और अज्ञानी के भेद की पहिचान है।

प्रश्न :- क्या धर्मी जीव को शुभाशुभ परिणाम होते ही नहीं?

उत्तर :- होते हैं, परंतु उन शुभाशुभ के समय उनसे भिन्न ज्ञान को वह अनुभवता है-जानता है; इसलिये राग से भिन्न ज्ञानपरिणमन भी उसे वर्तता है; और उस ज्ञानपरिणमन में तो रागादि का अभाव ही है, इसलिये ज्ञानपरिणमन में ज्ञानी को रागादि का कर्तृत्व है ही नहीं। जो रागादि परिणाम होते हैं, वे भी जीव के ही अस्तित्व में होते हैं, वे कहीं जीव से बाहर अन्यत्र कहीं नहीं होते और उतना अपना अशुद्धपरिणमन है—ऐसा धर्मी जानता है। जितना राग परिणमन है, उतना दु:ख भी है; परंतु विशेषता यह है कि राग के परिणमन-काल में ही भेदज्ञान के बल द्वारा वह धर्मी जीव अपने को रागरहित ज्ञातास्वरूप अनुभवता है-जानता है-श्रद्धा करता है; इसलिये ज्ञातापने का शुद्धपरिणमन उसे वर्तता है, उस शुद्धता में रागादि का अकर्तापना ही है। जबकि अज्ञानी को तो राग के समय आत्मा राग के स्वादरूप ही अशुद्धरूप अनुभव में आता है, राग से भिन्न किसी आत्मस्वरूप को वह नहीं जानता, इसलिये वह अकेले रागादि अशुद्धभावरूप ही परिणमित होता हुआ, उसी का कर्ता होता है।

इसप्रकार सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के भाव में परस्पर अत्यंत विरुद्धता है। जिसप्रकार सूर्यप्रकाश में अंधकार नहीं होता, उसीप्रकार चैतन्य के ज्ञानप्रकाश में रागादि-अंधकार नहीं होता। अपूर्ण दशा में राग होता है, परंतु धर्मी के ज्ञानप्रकाश में उसे तन्मयता नहीं है, धर्मी उसे ज्ञानप्रकाश से भिन्नरूप जानता है, इसलिये धर्मी जानता ही है, वह रागादिकर्म का कर्ता नहीं है।

अहा, शुद्ध चैतन्यदृष्टि की यह बात समझने पर अपूर्व भेदज्ञान होता है, और रागादि के कर्तृत्व से छूटकर शुद्ध ज्ञानपरिणमन द्वारा जीव मोक्षमार्ग को साधता है।

देखो, सर्व पक्षों से अनेकांतरूप वस्तुस्वरूप को जिनमार्ग के अनुसार यथावत् जानना चाहिए। धर्मी को रागादि अशुद्ध भाव का कर्तापना नहीं है—ऐसा कहा, वह स्वभाव के शुद्ध परिणमन की अपेक्षा से कहा है; परंतु उससे कहीं धर्मी को रागादि अशुद्ध परिणमन होता ही नहीं—ऐसा एकांत नहीं है; जितने रागादिभाव पूजा-तीर्थयात्रा आदि शुभ के, या व्यापार-धंधा आदि अशुभ के होते हैं, उतना अशुद्धपरिणमन भी उसी का है, वह कहीं दूसरे का नहीं है, या जड़ में वे भाव नहीं होते। उस जीव की पर्याय में ही वैसा अशुद्ध परिणमन अभी है। तथा ऐसे रागादिभाव जिसे होते हैं, उस जीव को धर्मी कहा ही नहीं जाता—ऐसा भी नहीं है। रागादि होते हों, तथापि उसी समय उनसे भिन्न शुद्ध चैतन्यभाव का परिणमन जिसे भेदज्ञान के बल से वर्तता है, वह जीव धर्मी है और उस धर्मी जीव के शुद्धपरिणमन में रागादि अशुद्धता का कर्तृत्व किंचित् भी नहीं है। हाँ, रागादि के समय उन रागादि जितना ही अपने को अशुद्ध अनुभवे और शुद्धतारूप परिणाम किंचित् न हो तो वह जीव अधर्मी है।—इसप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के परिणाम की जैसी स्थिति है, उसे यथावत् जानना चाहिये; तभी अपने में भेदज्ञान होगा और रागादि अशुद्धता का कर्तृत्व छूटकर शुद्ध ज्ञानपरिणमनरूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होगी।

भाई! अपनी हठ छोड़कर हम कहते हैं, तदनुसार आत्मा को अनुभव में ले... तुझे अपूर्व आनंद होगा

अनुभूति के बिना आत्मा शोभा नहीं देता; आत्मा अपनी अनुभूति पूर्वक ही शोभा देता है... अनुभूति करने के लिये छह महीना सतत प्रयत्न कर तो उसकी साक्षात् प्राप्ति होगी। अभी उसका अवसर है।

चैतन्यस्वरूपी आत्मा और रागादि अन्यभाव, उन दोनों का अत्यंत स्पष्ट भेदज्ञान कराके आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान करके अब तू मिथ्याभावों से विरम! जड़-चेतन की एकताबुद्धि की अपनी हठ को अब तू छोड़, और जड़ से भिन्न चैतन्य तत्त्व को अपने अंतर में देखकर आनंदित हो।

देह-कर्म-रागादि को आत्मा के साथ एकमेक मानना—अनुभवना, वह मिथ्यात्वरूप हठ है, क्योंकि वे आत्मरूप होते तो नहीं हैं, तथापि हठ से अज्ञानी उन्हें आत्मा मानता है। अनादिकाल से हठ द्वारा ही दु:खी हुआ है। अरे, अब हमने तुझे सर्व प्रकार देहादि से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व बतलाया, उसका अनुभव करने पर अतीन्द्रिय सुख होता है, वह बतलाया, इसलिये अब तू हठ छोड़कर प्रसन्न होकर अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा का संवेदन कर; देह और राग रहित चैतन्य की उपलब्धि से तुझे परम अपूर्व आनंद होगा। तुझे स्वयं उसकी प्रतीति होगी कि वाह! ऐसा शुद्ध चैतन्यतत्त्व पहले कभी अनुभव में नहीं आया था; चैतन्यभाव की ऐसी अपूर्व शांति कभी अनुभव में नहीं आयी थी। इसप्रकार महान आनंद सहित तुझे भेदज्ञान होगा। ज्ञान का विलास आनंदरूप है; जिसमें आनंद का स्वाद न आये, उसे ज्ञान कौन कहे ?

अरे जीव! तुझे अपने स्वरूप की अप्राप्ति कहीं शोभा देती है? आत्मा तो अपनी अनुभूति सहित ही शोभित होता है; अनुभूति रहित आत्मा शोभा नहीं देता। आत्मा की रुचि करके तू छह महीने तक उसके भेदज्ञान का अभ्यास कर, तो तुझे उसकी प्राप्ति अवश्य होगी;

उसके पीछे लग जा तो छह महीने से पूर्व उसकी प्राप्ति अवश्य होगी। अंतर में उसकी प्राप्ति होने पर अपने चैतन्य का अपूर्व विलास तुझे साक्षात् दृष्टिगोचर होगा, और उसका अतीन्द्रिय सुख अनुभव में आयेगा।

आत्मतत्त्व ऐसा नहीं है कि अनुभव में उसकी प्राप्ति न हो! अनंत जीव उसका प्रगट अनुभव कर-करके सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं; वर्तमान में भी उसका प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले जीव हैं; वे तुझसे कहते हैं कि हे जीव! ऐसे आत्मा का अनुभव तू भी कर! वह अनुभव हो सकता है। उस अनुभव की रीति हमने तुझे बतलायी है, तो अब तू परम उत्साह से उसका अभ्यास कर, जगत की अन्य सब चिंताएँ छोड़कर निश्चिंत होकर अंतरशोध में लग जा... तो अल्पकाल में ही तुझे अवश्य अपने आत्मा का अनुभव होगा;... हम वचन देते हैं कि इसप्रकार करने से आत्म-अनुभव होगा और अवश्य होगा। न हो ऐसी बात नहीं है। अरे, अपने स्वरूप के अनुभव बिना जीना-वह तुझे शोभा देता है ?—नहीं देता। तो अब श्रीगुरु की देशना पाकर वह अनुभव करने का यह अवसर है, इसलिये उसके पीछे ऐसा एकाग्र होकर लग जा कि छह महीने भी न लगे और शीघ्र आत्मा का अनुभव हो। भाई, अभी आत्मा का अनुभव न करेगा तो कब करेगा ? अनंतकाल के भवदु:ख से आत्मा को छुड़ाने का यह अवसर है, इस अवसर को तू मत चूकना। आत्मा के अपूर्व सुख को प्राप्त करने का यह अवसर है; इसलिये सर्वप्रकार से निश्चिंत होकर आत्मशांति की साधना में अपनी पूर्ण शक्ति लगा। कठिन है, परंतु हो सकता है। अवश्य तुझे उसकी प्राप्ति होगी। हम अंतर में उसकी प्राप्ति करके तुझसे कहते हैं कि तू भी इसप्रकार अपने अंतर में उसकी प्राप्ति कर।

आत्मा स्वयं अपने स्वसंवेदन से अनुभव में आये—ऐसा उसका स्वभाव है। भाई! अपने घर की बात तुझे क्यों नहीं रुचती ? और तुझसे क्यों नहीं होती ? उसे रुचि में लेकर ऐसा प्रयत्न कर कि अल्पकाल में प्रगट अनुभव हो।—परंतु अनुभव के लिये बीच में दूसरी बात न लाना; जगत की चिंता छोड़कर, निभृत-निश्चल-निश्चिंत होकर चैतन्यरस का स्वाद लेने में एकाग्र होकर अत्यंत रसपूर्वक उसमें लगा रहना-तो अवश्य तुझे चैतन्यरस का स्वाद आयेगा और जड़ तथा राग के साथ की एकत्वबुद्धि का मोह क्षण में टूट जायेगा। रागादि से अत्यंत भिन्न अपने चैतन्य-विलास को देखकर तुझे महा आनंद होगा कि वाह! मेरा तत्त्व ऐसा अद्भुत है!

ऐसा सुंदर है! ऐसे शांतरस से भरपूर है! रागादि विकल्प की जाति ही मुझसे बिल्कुल भिन्न है।—ऐसा भेदज्ञान करने पर परमतत्त्व अपने में देखकर तू निहाल हो जायेगा और तुझे ऐसा लगेगा कि—

''वाह! श्रीगुरु ने मेरा चैतन्यतत्त्व बतलाकर परम उपकार किया है।''

* * *

समाधिमरण के लिये आत्म-आराधना का वैराग्यरसपूर्ण उत्तम उपदेश

श्री पंच परमेष्ठी-गुरुओं ने ऐसा बतलाया है कि हे भव्य! जो यह ज्ञानस्वरूप तेरा आत्मा है, उसी में पंच परमेष्ठी पद विराजमान है। पंच परमेष्ठी के जो केवलज्ञानादि गुण हैं, उन गुणों का परिणमन आत्मा में ही होता है, आत्मा ही ऐसी दशारूप परिणमित होता है।—इसलिये ऐसे आत्मा को जानकर तू उसकी शरण ले। आत्माश्रित परिणमन द्वारा मुनिदशा, अरहंत—केवलज्ञानदशा और सिद्धदशा प्रगट होगी। पंच परमेष्ठीपद आत्मा की दशा है, उसे बाह्य में न खोज; उस दशारूप होने का सामर्थ्य जिसमें भरा है, ऐसे आत्मा में ही खोज। ऐसा आत्मा ही परमार्थ से शरणरूप है। अपने से बाह्य अन्य पंच परमेष्ठी का शरण भी वास्तव में तुझे नहीं है, उनका शरण तो व्यवहार से है, उनके आश्रय से तो शुभराग की उत्पत्ति होगी, कहीं मोक्ष की उत्पत्ति नहीं होगी। मोक्ष तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है। परद्रव्याश्रित अशुद्धता और स्वद्रव्याश्रित शुद्धता—यह जैनधर्म का महान सिद्धांत है; इसलिये मोक्षमार्ग स्वद्रव्य के आश्रय से ही सधता है; मोक्ष के हेतुरूप सम्यग्दर्शनादि कोई भी गुण पर के आश्रय से नहीं सधता।

देखो, यह वीतरागशासन! पर से अत्यंत निरपेक्ष और स्वद्रव्य में सर्वथा अंतर्मुख—ऐसा वीतरागमार्ग है। इसलिये स्वसन्मुख होकर शुद्धात्मा को ध्याने-अनुभवने से आत्मा स्वयं ही पंच परमेष्ठी पदरूप परिणमित हो जाता है। परम इष्टपद ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा एकाग्र होकर जो स्थिर हुआ, वह स्वयं परमेष्ठी है।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु—यह पाँच पद व्यवहार से आत्मा में ही हैं।

पंच परमेष्ठी पद, वह कहीं बाह्य भेष में नहीं रहता, परंतु आत्मा की शुद्ध परिणति में ही पंच परमेष्ठी पद है, इसलिये निश्चय से धर्मी जीव अपने आत्मा को ही परमेष्ठीस्वरूप ध्याते हैं; और ऐसे सत् ध्यान के फलरूप वे आनंद का अनुभव करते हैं।

अरे भाई! तेरा चैतन्यतत्त्व पंच परमेष्ठी पद से परिपूर्ण है... उसकी गहराई में उतरकर शांति खोजने के बदले तू बाह्यरस में क्यों रुक रहा है? अंतर की गहराई में उतरकर जिसने आत्मा की शांति का अनुभव किया, उसके अनुभव में परमार्थरूप से पंच परमेष्ठी का ध्यान हो गया। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' इसप्रकार धर्मी अपने आत्मा को ही सिद्धस्वरूप शुद्ध अनुभव करता है। अरे जीव! ऐसा उत्तम तत्त्व सुनकर तू उसकी भावना कर... उसमें उतर... तो तुझे शाश्वत रहनेवाला उत्तम सुख प्राप्त होगा।

जहाँ आत्मा स्वयं शरणरूप हुआ, स्वयं मंगलरूप हुआ, स्वयं उत्तम-परमेष्ठीरूप हुआ, वहाँ अन्य किसकी शरण लेना है! जब देह व्याधियों से घिर जायेगा, शरीर छूटने की तैयारी होगी, बाह्य में निंदा, अपयश आदि होंगे, वहाँ किसकी शरण लेने जायेगा? अंतर में चैतन्यतत्त्व स्वयं शांतिरूप है, उसमें उतरकर जिसने उसकी शरण ली, वह तो चाहे जैसी परिस्थिति में चैतन्यशांति के निर्विकल्परस का पान करता हुआ आनंदसहित शरीर को त्याग देता है। धन्य है वह दशा! उसकी भावना करनेयोग्य है। अरे, ऐसे स्वतत्त्व की भावना छोड़कर दुनिया को देखने कौन रुके? दुनिया, दुनिया में रही, अपने आत्मा की भावना में वह कहाँ बाधक या साधक है? संसार में निंदा होती हो तो उससे इस जीव के समाधिमरण में कोई बाधा आ जाये—ऐसा नहीं है, और दुनिया में प्रशंसा होती हो तो इस जीव को समाधिमरण में सरलता हो—ऐसा भी नहीं है। स्वयं अपने चैतन्य में अंतर्मुख होकर उसकी आराधना करे उसी को समाधि होती है। समाधि अर्थात् अंतर की अतीन्द्रिय शांति का वेदन अपने आत्मा में से आता है, बाहर से नहीं आता। इसलिये हे जीव! तू सदा अपने आत्मा के सन्मुख होकर उसकी भावना कर, तुझे उत्तम आराधनासहित मोक्षसुख की प्राप्ति होगी।

श्रावक के आचार [2]

जैन सद्गृहस्थ-श्रावक के आचार कितने सुंदर एवं धर्म से अलंकृत होते हैं—उसका कुछ वर्णन आत्मधर्म के अंक 350 में आपने पढ़ा; उसका दूसरा भाग आप यहाँ पढ़ेंगे। श्रावक को देव-गुर-शास्त्र की पहचान कैसी होती है, तत्त्वों की पहचान कैसी होती है, एवं तत्त्वज्ञानपूर्वक आचरणशुद्धि कैसी होती है?—यह समझना आवश्यक है, क्योंकि तत्त्वज्ञान एवं आचरणशुद्धि से ही जीव का जीवन सुशोभित होता है। (संपादक)

[सकलकीर्ति प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार, अध्याय 3 में से]

सच्चे देव-गुरु-धर्म के स्वरूप का चिंतन सम्यक्त्व की दृढ़ता का कारण है।

❀ वीतराग-सर्वज्ञ, वे देव हैं; रागादि हिंसारहित वीतरागता, वह धर्म है; परिग्रहरहित, रत्नत्रयवंत वे गुरु हैं। इनके अतिरिक्त न कोई देव है, न कोई धर्म है, न कोई गुरु है। उनका सच्चा स्वरूप जानकर श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन है।

❀ देव कैसे हैं? उनका स्वरूप समझने के लिये उनके कुछ गुणवाचक नाम कहते हैं—

❀ वे भगवान इन्द्र के द्वारा पंचकल्याणक पूजा के योग्य होने से अर्हत है।

❀ दु:खरूप मोह-अरि को हननेवाले होने से अरिहंत हैं।

❀ मोहरूपी अरि, ज्ञानदर्शनावरणरूप रज तथा अंतरायरूप रहस्य, उनके हरनेवाले होने से अरहंत हैं।

❀ राग-द्वेष-मोह के विजेता होने से वे जिन हैं।

❀ समुद्रघात के समय वे लोकव्यापी होते हैं अथवा केवलज्ञान से समस्त लोक-अलोक को जान लेते हैं—अत: जानने की अपेक्षा सर्वव्यापी हैं, इसलिये वे सर्वज्ञ ही विष्णु हैं, विष्णु अन्य कोई नहीं है।

❀ अंतरंग में केवलज्ञानादि अनंत-चतुष्टय सहित हैं तथा बाह्य में समवसरणादि दिव्य ऐश्वर्य सहित हैं, इसलिये वे ही ईश्वर हैं, अन्य कोई ईश्वर नहीं।

❀ समवसरण में उनके चार मुख दिखते हैं, इसलिये वे चतुर्मुख-ब्रह्मा हैं, अथवा उनका शुद्ध आत्मा ही परम ब्रह्मरूप होने से वे ब्रह्मा हैं, अन्य कोई ब्रह्मा नहीं है।

❀ मोक्ष के अनंत सुखरूप शिवकल्याण को प्राप्त होने से वे दो शिव भगवान हैं, अन्य कोई शिव नहीं।

❀ केवलज्ञान द्वारा समस्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्यों के ज्ञाता होने से वे ही बुद्धभगवान हैं, अन्य कोई बुद्ध नहीं।

❀ त्रिकाल-त्रिलोकवर्ती सर्व द्रव्य-पर्याय के ज्ञाता होने से वे ही सर्वज्ञ हैं।

❀ रत्नत्रयधर्मरूपी तीर्थ के प्रवर्तक होने से वे तीर्थंकर हैं।

❀ स्त्री-वस्त्रादि समस्त परिग्रह से रहित होने से वे ही वीतराग हैं; वे ही धर्मनेता हैं, वे ही निर्ग्रंथ हैं; वे ही देवाधिदेव तथा जगतगुरु हैं, और वे ही परमात्मा हैं।

सर्व दोषरहित और सर्व गुणसहित ऐसे भगवान जिनेन्द्रदेव का स्वरूप सम्यक्त्वशुद्धि के लिये हे भव्य! तू जान और उसका ध्यान कर!

ऐसे भगवान को पहिचानकर उनके नाम का जाप करना, वह भी महान पुण्य का कारण है।

जिनेन्द्रदेव के स्वरूप को जो जानते हैं, अर्थात् उनके चेतनमय शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जानते हैं, वे अपने शुद्धात्मा का अनुभव करके अल्प काल में जिन हो जाते हैं। अतः हे भव्य! मोक्ष के लिये अनंत महिमावंत जिनेन्द्रभगवान को पहिचानकर तू उनकी सेवा कर। क्षुधा-तुषा-भय-राग-द्वेष-मोह-चिंता-जरा-रोग-मृत्यु-खेद-प्रश्वेद-मद-अरति-आश्चर्य-जन्म-निद्रा और विषाद, ये अठारह दोष संसारी जीवों के होते हैं; भगवान जिनेन्द्रदेव के ये कोई दोष नहीं होते।

मोह के नाश से जिनके अनंत सुख प्रगट हो गया है, ऐसे भगवान को भूख या प्यास कैसी? जिनके द्वेष ही नहीं, उनके पास शस्त्र कैसे? भय न होने से भगवान की मुद्रा भी अतिशय

शांत-सौम्य-निर्विकार है। रागादि का अभाव होने से स्त्री-वस्त्र या आभूषण का संग नहीं है। आत्मस्वभाव की सिद्धि हो जाने से अब उन्हें किसी प्रकार की चिंता नहीं रही है। उन्हें कभी वृद्धावस्था नहीं आती क्योंकि अविनाशी मोक्षपद प्राप्त कर लिया है; उन्हें नवीन आयुकर्म का बंध नहीं है, इसलिये नवीन देह धारण करनेरूप मृत्यु भी नहीं है; जिसे आयु का सर्वथा अभाव हो उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। भगवान ने सब जान लिया है। अतः उन्हें कहीं भी आश्चर्य नहीं होता; स्वयं आप ही सर्वोत्कृष्ट हैं—फिर मद या अभिमान किसका? देह के छूट जाने पर उस मुक्त जीव को नये जन्म का अभाव है। उपयोग सर्वथा शुद्ध हो जाने से उन्हें निद्रा नहीं होती; सदैव आनंद की अनुभूति में लीन रहनेवाले उन भगवान को विषाद कैसे होगा? अनंत वीर्य संपन्न भगवान को ज्ञान-सुख के स्वाभाविक परिणमन में थकावट या खेद भी कैसे होगा?

अहो! ऐसे सर्वगुणसंपन्न परम देव, वे ही जगत में उत्तम देव हैं; उनका बतलाया हुआ मार्ग ही जगत के जीवों को हितकारी है।

हे भव्य! कुछ लोग भगवान अरिहंतदेव को भी क्षुधा-तृषा-आहार-जल-रोगादि दोष होना मानते हैं, तो वह सत्य होगा या असत्य?—इसप्रकार के संदेह को तू सर्वथा छोड़ दे। पूर्ण सुखरूप परिणमित, अनंत आत्मबलयुक्त अरिहंतदेव को भूख-प्यास या आहार-जल-रोग-औषधादि कोई दोष नहीं होते-ऐसा निःशंक जानो।

जहाँ भूख-प्यास लगती हो, वहाँ वेदना होती है और पूर्ण सुख नहीं रहता।

यदि आहार-जल ग्रहण करें तो तत्संबंधी राग-द्वेष होगा और वीतरागता नहीं रहेगी।

अहा, जिनको चैतन्य के अनंत अतीन्द्रिय पूर्ण सुखरस का भोजन निरंतर है, उन्हें भूख-प्यास कैसी? और आहार भी कैसा?

अरे, आहार का नाम मात्र लेने से भी मुनि को प्रमाद होने से वे 'प्रमत्तसंयत' हो जाते हैं, तो फिर जो आहार का ग्रहण करे उसे सर्वज्ञता कैसे हो सकती है।

भगवान अरिहंत अतीन्द्रिय ज्ञानरूप हुए हैं, इन्द्रियज्ञान ही उन्हें नहीं रहा, तब इन्द्रियविषय उन्हें कैसे होंगे, इसलिये उन्हें आहार कैसे होगा? जिसकी रसनाइन्द्रिय जीवंत हो, उसी को रस का आहार होता है; अर्थात् जो सर्वथा अरस-भावरूप न हो, उसी को रस का उपभोग होता है; सर्वज्ञ को नहीं।

देखो, यदि दूर से भी मांसादिक दिख जायें तो हम भी भोजन में अंतराय समझकर छोड़ देते हैं; तो फिर केवली भगवान जो कि सारे संसार के मांसादिक को साक्षात् देख रहे हैं, वे कैसे भोजन करें ?-कभी नहीं करते।

जिसके रागादिक दोष हों, जिसकी शक्ति अल्प हो, जिसके इन्द्रियज्ञान कार्य करता हो और जिसे दु:ख हो—उसी को भोजन हो सकता है; किन्तु जो वीतराग हैं, जिनकी आत्मशक्ति अनंत वीर्यरूप से विकसित हो गई है, जिनको संपूर्ण अतीन्द्रियज्ञान विद्यमान है, और जो संपूर्ण सुखी है—ऐसे भगवान अरिहंतदेव को क्षुधा या आहार नहीं होता—ऐसा जानकर नि:शंक होओ।

किसी जीव ने उपवास किया हो और उसके संबंध में कोई ऐसा कहे कि 'इसने आज खाया है'—तो वह झूठा कलंक लगानेवाला पापी है; तब फिर जिन्होंने आहार का सर्वथा त्याग कर दिया है, ऐसे जगत्गुरु भगवान अरिहंत के लिये ऐसा कहना कि 'भगवान आहार करते हैं'—यह तो महान पाप है। अरे, हम नहीं कह सकते कि अरिहंतदेव को ऐसा कलंक लगानेवाले को कैसा भयंकर पाप लगता होगा! (अरिहंतदेव के अवर्णवाद से तीव्र मिथ्यात्वकर्म का बंधन होता है।)

अत: हे मित्र! जिनको आहार-जल नहीं है, बिना आहार के ही जो परम सुखी है और ज्ञानादि अनंत गुणों से जो अलंकृत है—ऐसे वीतरागी अरिहंत परमात्मा, वे देव हैं—ऐसा नि:शंक जानकर तुम उनकी सेवा करो। सर्वज्ञ की सच्ची पहिचान से तुम्हारा मिथ्यात्व मिट जायेगा और तुम्हें सम्यक्त्व होगा, तुम्हारा भव-दु:ख दूर होकर तुम्हें मोक्षसुख होगा।

पसीना न होना, मल-मूत्र न होना, शरीर का रक्त शुक्ल होना, सुंदर रूप, सुगंध, उत्तम संस्थान, उत्तम संहनन, दिव्य वाणी, इत्यादि जो गुण या अतिशय अरिहंतदेव के कहे जाते हैं, वे सब, जीव के आश्रित नहीं हैं परंतु पुद्गल के आश्रित हैं, अर्थात् वे शरीर के धर्म हैं, जीव के धर्म नहीं हैं; जीव का धर्म तो केवलज्ञान पूर्णसुख इत्यादि हैं, उन्हीं के द्वारा भगवान की सच्ची पहिचान होती है।

सर्वज्ञपद को प्राप्त भगवान जिनेन्द्रदेव पर कभी किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हो सकता। उनके सान्निध्य में किसी जीव की हिंसा नहीं होती, सब जीव परस्पर शत्रुता छोड़कर

मित्रभाव से रहते हैं। प्रभु के शरीर की छाया नहीं पड़ती, नेत्रों की पलकें नहीं हिलतीं; बोलने से ओष्ठ नहीं खुलते, और वे जमीन पर नहीं चलते किंतु गगन में विहार करते हैं—(बिना डग भरे अंतरीक्ष जाकी चाल है।)

अरे, ऐसे परम वीतराग जिनदेव को छोड़कर जो तुच्छ-विषयासक्त कुदेवों को पूजता है, उस मूर्ख जीव के मिथ्यात्वपाप का क्या कहना? वह भयंकर भवसमुद्र में गोते खाता है, अमृत को छोड़कर वह विष पीता है। जैसे आकाश से कोई बड़ा नहीं है, उसीप्रकार भगवान जिनेन्द्रदेव से बड़ा कोई नहीं है। अत: हे भव्य! तुम ऐसे भगवान को पहिचानकर उनकी भक्ति करो, और उनके कहे हुए वीतरागधर्म का आचरण करो। उस धर्म के आचरण से तुम भी भगवान हो जाओगे।

धर्मरूपी जो कल्पवृक्ष है, उसका फल मोक्ष है और सम्यग्दर्शन उसका मूल है। दुष्ट जीव के अंतर में भरी हुई पाप-मलिनता कहीं पानी के स्नान से नहीं धुलती, वह तो सम्यग्ज्ञान के पवित्र जल से ही धुलती है। पिता-माता आदि किसी मृत आत्मा के लिये नहीं परंतु केवल अपने धर्मपालन के लिये श्रद्धापूर्वक सुपात्रों के लिये दान देना, यही सच्चा उत्तम श्राद्ध है; इसके अतिरिक्त मृतात्माओं के नाम पर किये जानेवाले श्राद्ध आदि तो मिथ्यात्व के पोषक हैं। अज्ञानी एवं राग-द्वेष में अत्यंत आसक्त ऐसे मूर्ख जीवों द्वारा कुधर्म का उपदेश दिया जाता है। अज्ञानियों को ठगनेवाला वह कुधर्म का उपदेश अनेक दोषों से भरा है; अत: हे भव्य! तू विषैले सर्प के समान जानकर उसे छोड़ दे।

अग्नि में जल मरना अच्छा, गले में सर्प डालना अच्छा, विष का भक्षण करना अच्छा, परंतु मिथ्यात्व के सेवनपूर्वक जीवित रहना अच्छा नहीं है।

—इसलिये कुधर्म को छोड़कर जिनधर्म का सेवन करो। जिनमार्ग में गुरु का वेष भी श्री जिनदेव के समान (दिगम्बर) होता है। ऐसे रत्नत्रयवंत गुरु को पहिचानकर उनकी सेवा करो। शरीर भले मलिन हो, किंतु उनका चित्त सदा मोहरहित निर्मल है, मोक्षसुख के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी उनका चित्त आसक्त नहीं है। जिनके मुखकमल से सदा वीतरागता के उपदेशरूपी परम अमृत झरता है—ऐसे श्रेष्ठ गुरु की तुम सेवा करो, और पापपोषक कुगुरुओं का सेवन दूर से ही छोड़ो। जो स्वयं ही अज्ञान व दुराचार से भव-समुद्र में डूब रहे हैं, वे दूसरों को कैसे तारेंगे?

सर्प-शत्रु-चोर आदि का समागम तो अच्छा, परंतु मिथ्यात्वमार्ग में लगे हुए कुगुरुओं का समागम बुरा—क्योंकि सर्पादि के संबंध से तो एक ही भव में दु:ख होता है, जबकि कुरुओं के सेवन से तो जीव अनंत भव में दु:खी होता है।

श्री जिनेन्द्रदेव, वीतरागधर्म और निर्ग्रंथ गुरु—ये तीनों सम्यक्त्व के प्रधान कारण हैं, अर्थात् उन तीनों की यथार्थ पहिचान और श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होता है। हे वत्स! यह सम्यग्दर्शन सर्व दोषरहित अमृत समान है, भगवान तीर्थंकर परमदेव ने इसका निरूपण किया है, तीन लोक के इन्द्र भक्ति से इसकी आराधना करते हैं; भव्य-सुपात्र में ही यह रहता है; यह सम्यग्दर्शन होते ही अनेक उत्तम गुण स्वयमेव प्रगट हो जाते हैं; मोक्षवृक्ष का यह बीज; अत: हे भव्य जीवो! तुम सब प्रकार की शंका को छोड़कर ऐसे सम्यग्दर्शन को शीघ्र धारण करो... सम्यक्त्वरूपी आनन्द-अमृत का पान करो।

[प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार अध्याय 4 में से दोहन]

सम्यग्दर्शन मोक्षमंदिर का प्रथम सोपान है।

मिथ्यादृष्टि जीव अहिंसा धर्म को नहीं समझ सकता। मिथ्यात्व विष समान है, और वह जीव के ज्ञान-चारित्रादि को भी नष्ट करता है।

अरिहंतों को भी आहार माननेवाले श्वेताम्बरों को सांशयिक मिथ्यादृष्टि में गिना है।

सम्यग्दर्शन नरक-तिर्यंचगति के द्वार बंद करनेवाला है, और स्वर्ग-मोक्ष के द्वार खोलनेवाला है। उसे हे भव्य! तुम अंगीकार करो।

— प्रभो! सम्यग्दृष्टि का नि:शंकता-अंग कैसा है? वह कहो।

— सुनो! हे वत्स! पर्वत कदाचित् चलायमान हो जाये, अग्नि कदाचित् शीतल हो जाये, तथापि भगवान सर्वज्ञदेवकथित जीवादि तत्त्वों में कभी अंतर नहीं पड़ता। इसप्रकार सूक्ष्म तत्त्वों में, धर्म के स्वरूप में, अरिहंत के स्वरूप में, मुनियों के स्वरूप में तथा ज्ञान में और मोक्षमार्ग में शंका छोड़कर निश्चल श्रद्धा रखना तो नि:शंकता है।

जिसे ऐसी नि:शंकता है, उसने सभी कुदेवों को तथा कुमार्गों को छोड़ दिया है, वह

सात भयरहित अपने स्वरूप में निर्भय रहता है; नि:शंक एवं निर्भयरूप से जिनमार्ग को साधकर मोक्ष प्राप्त करता है।

हे भव्य! सम्यग्दर्शन अनुपम गुणों का भंडार है, मोक्ष का मूल है; तीर्थंकर भी उसका सेवन करते हैं; संसार समुद्र से पार होने के लिये वह नौका है, वही पवित्र तीर्थ है; अत: कुसंगति छोड़कर तुम ऐसे कल्याणरूप सम्यग्दर्शन का सेवन करो।

स्वसन्मुख परिणति

भाई, परसन्मुख परिणति से तू अनंत काल भटका और दु:खी हुआ। परम सुख से परिपूर्ण ऐसे आत्मस्वरूप में स्वोन्मुख परिणति कर तो तुझे परम सुख हो, और तेरा दु:ख तथा परिभ्रमण दूर हो जाये। स्वसन्मुख परिणति द्वारा निजगृह में आ और आनंदित हो।

स्वसंवेदनरूप श्रुतज्ञान

आचार्यदेव को केवलज्ञान तो नहीं है किंतु केवलज्ञान का साधक ऐसा श्रुतज्ञान है। वे कहते हैं कि—हमारा यह अंतरोन्मुख श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान जैसा ही है; केवलज्ञानी की भाँति वे स्वसंवेदन-प्रत्यक्षपूर्वक शुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं। ज्ञान अल्प होने पर भी उस श्रुतज्ञान को अंतरोन्मुख करके हम केवल आत्मा का अनुभव करते हैं। इसलिये हम भी 'केवली' हैं। केवल आत्मा का अनुभव करनेवाला यह ज्ञान ही केवलज्ञान का साधक है; इसलिये साध्य के साथ जो केलि कर रहा है—ऐसे स्वसंवेदनरूप श्रुतज्ञान द्वारा अकेले आत्मा का अनुभव करते हुए हम निश्चल रहते हैं... दूसरी आकांक्षा से बस होओ!

— इसप्रकार संतों ने केवलज्ञान के साथ श्रुतज्ञान की संधि की है।

सम्यक्त्व-महिमा

हे वत्स! तू परम भक्ति से सम्यक्त्व को भज!

❀ सकलकीर्तिरचित प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार के 11वें अधिकार में अष्टगुणसहित और सर्वदोषरहित ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व की परम महिमा बतलाकर उसकी आराधना का उपदेश दिया है; उसमें 108 श्लोक हैं, उनका यह सारांश है।

❀ वीतराग जिनधर्म का सेवन छोड़कर मिथ्याधर्म के सेवन से जो मूढ़ जीव आत्मकल्याण चाहता है, वह जीने के लिये विष खानेवाले के समान मूर्ख है।

❀ बुधजन अल्पज्ञान पाकर उसका मद नहीं करते। अरे, पूर्व के महान श्रुतधरों के समक्ष मेरा यह आल्पज्ञान किस गिनती में है?

❀ अरे, क्षणभर में नष्ट हो जानेवाले ऐसे शारीरिक बल का अभिमान कैसा?

❀ विचित्र-अद्भुत लोकोत्तर सम्यग्दर्शन-कला के निकट लौकिक सुंदर-लेखनादि क्रिया का अभिमान करना, यह भी अशुभ है।

❀ जैसे मलिन दर्पण में मुख नहीं दिखता, वैसे मोह से मलिन मिथ्या श्रद्धा में आत्मा का सच्चा रूप नहीं दिखता, मुक्ति का मुख उसमें नहीं दिखता।

❀ जैसे निर्मल दर्पण में मनुष्य अपने रूप को देखते हैं, वैसे सम्यक्त्वरूपी निर्मल दर्पण में धर्मी जीव मुक्ति का मुख देखते हैं, अर्थात् अपना सच्चा रूप देखते हैं।

❀ सम्यग्दर्शनसहित जीव विशेष ज्ञान-व्रतादि के बिना भी इन्द्र-तीर्थंकर आदि विभूतियाँ प्राप्त करते हैं।

❀ सम्यग्ज्ञान-चारित्रादि का मूल भगवान ने सम्यग्दर्शन को कहा है; उसके बिना ज्ञान अज्ञान है, और चारित्र कुचारित्र है, अतः मोक्ष के लिये निरर्थक है।

❀ भले ही व्रत-चारित्र या विशेष ज्ञान न हो, तथापि उनके बिना अकेला सम्यक्त्व भी

अच्छा है, प्रशंसनीय है; परंतु मिथ्यात्वरूपी विष से दूषित व्रत-ज्ञानादि अच्छे नहीं हैं, वे मोक्ष का साधन नहीं हो सकते।

❀ सम्यक्त्व से रहित जीव वास्तव में पशु समान हैं; जन्मांध की भाँति वह धर्म-अधर्म को नहीं जानता।

❀ दु:खों से भरे नरक में भी सम्यक्त्वसहित जीव शोभा पाता है; किंतु सम्यक्त्व से रहित जीव देवलोक में भी शोभा नहीं पाता; क्योंकि नरक का जीव तो सारभूत ऐसे सम्यक्त्व के प्रताप से वहाँ से निकलकर लोकालोक प्रकाशक तीर्थनाथ होगा; जबकि मिथ्यात्व के कारण भोगों में तत्पर रहनेवाला वह देव का जीव आर्त्तध्यान से मरकर स्थावर योनि में जायेगा।

❀ तीन काल-तीन लोक में सम्यक्त्व समान दूसरा कोई धर्म नहीं है; जगत में वही जीवों को परम हितकर है।

❀ सम्यक्त्व के समान जीव को अन्य कोई मित्र नहीं, अन्य कोई धर्म नहीं, अन्य कोई सार नहीं, अन्य कोई हित नहीं, अन्य पिता-मातादि कोई स्वजन नहीं, और अन्य कोई सुख नहीं। मित्र-धर्म-सार-हित-स्वजन-सुख ये सम्यक्त्व में ही समा जाते है।

❀ सम्यक्त्व से अलंकृत चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा जाता है; परंतु सम्यक्त्व से रहित जीव त्यागी हो तो भी पद-पद पर निंदनीय है।

❀ सम्यक्त्व को एकबार अंतर्मुहूर्त मात्र के लिये भी ग्रहण करके, जीव कदाचित् उससे भ्रष्ट हो जाये, तथापि अल्पकाल में ही (पुन: सम्यक्त्वादि ग्रहण करके) वह अवश्य मुक्ति प्राप्त करेगा।

❀ जिस भव्य जीव को सम्यक्त्व है, उसके हाथ में चिंतामणि है, उसके गृह में कल्पवृक्ष तथा कामधेनु है।

❀ इस लोक में सम्यक्त्व भव्य जीवों को निधान की भाँति सुख का दाता है; वह सम्यक्त्व जिसने प्रगट किया, उसका जन्म सफल है।

❀ कोई जीव हिंसादिक को छोड़कर, वन में जाकर अकेला बसता है और शीत-आताप सहन करता है, यदि सम्यक्त्व से रहित है तो वह वन के वृक्ष जैसा है।

❀ सम्यक्त्व से रहित जीव दान-पूजा-व्रतादिक में जो किंचित् पुण्य करता है, वह सब विफल है—विरुद्ध फलवाला है।

❀ दृष्टिहीन जीव कुछ व्रत-दानादि पुण्य करके, उसके फल में इंद्रियभोगों को पाकर फिर भवारण्य में भ्रमण करता है।

❀ सम्यक्त्व के बल से जो कर्म सहज ही नष्ट होते हैं, वे सम्यक्त्व के बिना घोर तप से भी नष्ट नहीं होते।

❀ सम्यक्त्वादि से विभूषित गृहस्थपना भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह व्रत-दानादि से संयुक्त होता है और भावीनिर्वाण का कारण है।

❀ मुनि के व्रतसहित, सर्वसंगरहित, देवों से भी पूज्य ऐसा जिनरूप, वह भी सम्यग्दर्शनादि बिना शोभा नहीं पाता; वह तो 'प्राण से रहित सुंदर शरीर' जैसा है।

❀ दर्शनरहित जीव कभी निर्वाण नहीं पाता। सम्यक्त्व से अलंकृत जीव कदाचित् चारित्रादि से च्युत हुआ हो, तथापि पुनः चारित्र अंगीकार करके मोक्ष प्राप्त करेगा।

❀ जैसे नेत्रहीन जीव रूप को नहीं जानता, उसीप्रकार सम्यक्त्वचक्षु से रहित अंध जीव देव-गुरु के स्वरूप को या गुण-दोष के स्वरूप को नहीं जानता।

❀ जैसे प्राणहीन शरीर को मृतक कहा जाता है, उसीप्रकार दृष्टिहीन जीव को चलता-मृतक (चल शव) कहा जाता है।

❀ सम्यक्त्वसहित जीव भले ही मात्र नमस्कार मंत्र ही जानता हो (अधिक शास्त्रज्ञान न हो), तथापि गौतमादि गणधरदेव उसे सम्यग्ज्ञानी कहते हैं; और सम्यक्त्व से रहित जीव कदाचित् 11 अंग का ज्ञाता हो, तथापि उसे अज्ञानी ही कहते हैं।

❀ अहो, यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र का बीज है, मुक्तिसुख का दातार है, उपमारहित अमूल्य है; उसे हे जीव! तू सुख के लिये ग्रहण कर।

❀ जिसने अपने सम्यक्त्वरत्न को स्वप्न में भी दूषित नहीं किया, वह जीव जगत में धन्य है-पूज्य है-वंद्य है और उत्तम बुधजनों के द्वारा प्रशंसनीय है।

❀ दृष्टिरत्न सहित वह जीव जहाँ भी जायेगा, वहाँ अनेक महिमायुक्त और सर्व इंद्रियसुखों

के बीच में रहने पर भी धर्मसहित रहेगा; और कल्याण-परम्परासहित, तीन लोक के लिये आश्चर्यकारी ऐसे धर्मचक्र से अलंकृत होगा; अनंत महिमायुक्त, दर्शनीय एवं सुख की खान ऐसी तीर्थंकर विभूति को भी वह उत्तम धर्मात्मा प्राप्त करेगा।

❀ अधिक क्या कहना ?—जगत में जितने भी सुख हैं, वे सब सर्वोत्कृष्टरूप से सम्यग्दृष्टि को प्राप्त होते हैं।

एतत् समयसर्वस्वम् एतत् सिद्धान्तजीवितम्।
एतत् मोक्षगतेः बीजं सम्यक्त्वं विद्धि तत्त्वतः॥

विधिपूर्वक उपासित किया गया यह सम्यक्त्व ही समय का सर्वस्व है—सर्व शास्त्रों का सार है, वही सिद्धांत का जीवन है—प्राण है, और वही मोक्षगति का बीज है।

सम्यक्त्व जग में सार है, वह समय का सर्वस्व है;
सिद्धान्त का है प्राण एवं मोक्ष का दातार है।
विधि जानकर आराधना बहुमान से सम्यक्त्व को,
सुख प्राप्त ऐसा करोगे आश्चर्य होगा जगत को॥

❀ शुद्ध सम्यक्त्व के आराधक धर्मात्मा को मोक्षसुख प्राप्त होता है, तब फिर स्वर्ग की तो क्या बात ? (जिसे मोक्षसुख प्राप्त होना है, वह स्वर्गसुख की इच्छा क्यों करेगा ?)

❀ निरतिचार सम्यक्त्व धारक को तीन लोक में कौन सा पदार्थ अलभ्य है ?—जगत में कोई भी वस्तु उसे अलभ्य नहीं है।

❀ सम्यग्दर्शन के प्रताप से मुनियों का ऐसा मोक्षसुख होता है कि जो स्वयंभू है, असारभूत ऐसे इंद्रियविषयों से जो पार है, जो देहादि के भार से रहित है, उपमा से रहित है, अत्यंत सार है और संसार से पार है; रोग-जन्म-शंका-बाधा उसमें नहीं है।

❀ अहा, यह सम्यग्दर्शन सकल सुख का निधान है, स्वर्ग-मोक्ष का द्वार है, नरकगृह को बंद करने के लिये किवाड़ है, कर्मरूपी हाथी को मारने के लिये सिंह जैसा है, दुरितवन को छेदनेवाला कुठार है, समस्त सुखों का भंडार है। समस्त प्रकार के संशय रहित ऐसे सम्यक्त्व हो हे जीव ! तू भज।

❀ हे मित्र! कर्मरूपी पर्वत को चूर-चूर करने के लिये वज्रपात के समान, दुःखदावानल को शांत करने के लिये मूसलाधार वर्षा के समान, सारभूत मोक्षसुख का देनेवाला और गुणों का धाम—ऐसा यह सम्यग्दर्शन है, तू मोक्ष के लिये उसे भज!

❀ अहो, यह सम्यग्दर्शन है, सो मोक्षफल देनेवाला सच्चा कल्पवृक्ष है; जिनवर वचनों की श्रद्धा उसका मूल है, तत्त्वश्रद्धा उसका तना है, समस्त गुणों की उज्ज्वलतारूप जल-सिंचन द्वारा वर्द्धमान है, चारित्र उसकी शाखाएँ हैं; पंचसमिति उसके पुत्र-पुष्प हैं, और मोक्षसुखरूपी फल से वह लद रहा है; इसप्रकार यह सम्यग्दर्शन सर्वोत्तम कल्पद्रुम है; अहो जीवो! इसका सेवन करो। (इस कल्पवृक्ष की शीतल छाया में रहनेवाला भी महान भाग्यवान है।)

❀ वे उत्तम पुरुष धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, तीन लोक में पूज्य हैं, वे ही सार-असार का विवेक करने में चतुर हैं, पाप शत्रु का विध्वंस करनेवाले हैं, और वे सर्व सुखों को भोगते हुए मुक्तिमहल में विराजते हैं—कि जो सारभूत सर्वगुणों का घर एवं अद्वितीय ऐसे सम्यक्त्व को धारण करते हैं। हे भव्य जीवो! तुम भी ऐसे सम्यक्त्व को आज ही धारण करो।

''जगत इष्ट नहिं आत्म से''

जगत को प्रसन्न करने की अपेक्षा आत्मा को प्रसन्न कर

अहा, जैनशासन कोई अपूर्व है। अन्य किसी के साथ उसकी तुलना नहीं होती। अन्य मिथ्यामतों के साथ सर्वज्ञ के जैनधर्म की तुलना, वह तो जनरंजन है; और जहाँ जनरंचन है, वहाँ जिनरंजन नहीं होता। जनरंजन, वह तो संसार है। भाई! तू जगत को संतुष्ट करने के लिये रुकेगा तो मोक्ष को कब साधेगा? जनरंजन की वृत्ति छोड़कर जिनरंजन कर... अर्थात् आत्मा संतुष्ट हो और आत्मा का हित हो—ऐसा कर। धर्मी तो जनरंजन छोड़कर 'आत्मरंजन' करता है। लोग संतुष्ट हों या न हों, परंतु मेरा आत्मा संतुष्ट हो और वह धर्मसाधन द्वारा इस भवदुःख से छूटकर मोक्ष सुख को प्राप्त करे—ऐसा धर्मी का लक्ष है।

ज्ञानगोष्ठी

एक ही अक्षर में सातों शक्तियाँ

— वा — व — वा — वा — व — व — व — वा — वा — व — व

❀ यहाँ 11 अक्षर दिये गये हैं, और 11 रिक्त स्थान हैं। उन 11 स्थानों पर एक-एक अक्षर रखना है।

❀ यह ग्यारह अक्षर भिन्न-भिन्न जाति के नहीं हैं, परंतु एक ही जाति के एक समान अक्षर हैं।

❀ समस्त रिक्त स्थानों पर एक ही अक्षर को रखने से आत्मा की सात शक्तियों के नाम बन जाते हैं। (समयसार में में उन सातों शक्तियों का एक साथ वर्णन किया गया है।) यदि शब्दों का बराबर विग्रह करना आता हो तो सातों शक्तियों के नाम हो जाते हैं।

बस, आपको एक ही अक्षर ढूंढ़कर खाली स्थानों को भर देना है। एक अक्षर ढूँढ़ने पर आपको सातों शक्तियाँ मिल जायेंगी।—कैसा सुंदर लाभ है।—तो लीजिये हाथ में समयसार... और ढूँढ़िये सातों शक्तियाँ।

नया मोड़ ..... नयी स्फूर्ति

जैन समाज का बड़ा सौभाग्य है कि कानजीस्वामी-सा प्रकांड विद्वान, त्यागी प्रतिभाशाली अध्यात्मवादी मिला, जिनके प्रवचनों ने जैन समाज की प्रवृत्ति को नया मोड़ दिया, और उसमें एक नयी स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। नवयुवकों को स्वाध्याय की ओर आकर्षित किया। जैनसमाज आज सजीव दिखती है।

(उ.प्र. विधानसभा के भू.पू. सदस्य श्री रतनलालजी जैन लिखित जैनधर्म-पुस्तक : पृष्ठ-224)

महावीर प्रभु का निर्वाण-महोत्सव

(4)

अपने मोक्षमार्ग के नेता और धर्मतीर्थ के नायक भगवान श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव के निर्वाण-महोत्सव के इस 2500वें महान वर्ष में उनके प्रति पवित्र अंजलिरूप लेखमाला का यह चौथा लेख है।

[गतांक से आगे]

महावीर का मार्ग

ज्ञान और राग की भिन्नता के सूक्ष्म बोधवाला जीव महावीर प्रभु के वीतरागमार्ग को प्राप्त करने के लिये पात्र है।

मात्र इंद्रियज्ञान द्वारा या शुभराग द्वारा महावीर का मार्ग प्राप्त नहीं किया जा सकता।

चैतन्य की अनुभूति के निकट इंद्रियज्ञान तथा शुभराग तो स्थूल है, उसमें चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करने का सामर्थ्य नहीं है।

चैतन्यतत्त्व को समझने के लिये ज्ञान को सूक्ष्म (इंद्रिय और राग से परे) करना चाहिए।

सूक्ष्मबुद्धि से स्व-पर को भिन्न जानकर अंतर में बारंबार स्वतत्त्व का गहरा परिचय करने से उसका अपूर्व अनुभव होता है।—और वही महावीरप्रभु का मार्ग है।

—: तीन बातें :—

देखों, इसमें तीन बातें आयीं—

1. सूक्ष्मबुद्धि से स्व-पर का भेदज्ञान। 2. स्वतत्त्व का बारंबार परिचय। 3. अनुभव।

❀ सर्वप्रथम सर्वज्ञ के मार्ग अनुसार परीक्षा करके, सूक्ष्मबुद्धि से स्व-पर को भिन्न जानना चाहिए।

❀ स्व-पर को भिन्न जानकर क्या करना ?

आत्मा के स्वभाव का ही परिचय करना, और पर का परिचय छोड़ना। पर को जानना तो कहा परंतु उसका परिचय करना नहीं कहा। परिचय तथा अभ्यस तो बारंबार अपने चैतन्यतत्त्व का ही करना चाहिए। राग का परिचय नहीं करना। स्व-पर को भिन्न जानकर पर से भिन्न अपने चैतन्यस्वभाव के सद्भाव का परिचय करना, गहरा विचार करना।

❀ **स्वभाव का परिचय करने से क्या होता है ?**

उसका साक्षात् अनुभव होता है। इसलिये पर से भिन्न अपना जो परम आनंद-स्वभाव है, उसमें बारंबार सन्मुखता करके अत्यंत रसपूर्वक उसका परिचय करना। अनंत स्वभावरूप चैतन्यसत्ता स्वयं है। उसका परिचय कहो, संग कहो, प्रेम कहो, तन्मय परिणाम कहो, एकाग्रता कहो,—उसके फल में अपूर्व शांतरस का अनुभव होता है।

— यह परमार्थ सत्-संग है; 'सत्' ऐसी अपनी चैतन्यसत्ता, उसका संग अर्थात् अनुभव, वह सच्चा 'सत्-संग' है। जिसने परसंग छोड़कर ऐसे सत् का साथ किया है, वह जीव मोक्ष के मार्ग में आया है; और उसने संसार का संग छोड़ दिया। अनादिकाल के अपने असंग चैतन्यतत्त्व का संग छोड़कर अज्ञानी ने राग का और पर का संग किया है-अर्थात् असत्-संग किया है; इसलिये वह संसार में दुःखी हुआ। वह असत्-संग छोड़कर अब सत् का संग किया, चैतन्य के सद्भावरूप सत् का संग किया, परिचय किया, अनुभव किया। वह जीव धर्मी हुआ और मोक्ष के मार्ग में आया।

विविध समाचार

सोनगढ़ में जैनदर्शन-शिक्षणशिविर

सोनगढ़ में इस वर्ष जैनदर्शन शिक्षण-शिविर का निर्णय किया गया है। जो प्रथम भाद्रपद शुक्ला 10वीं मंगलवार तारीख 27-8-74 से द्वितीय भाद्रपद कृष्णा चौदस रविवार तारीख 15-9-74 तक 20 दिन चलेगा। जिन भाईयों को शिक्षण-शिविर में सम्मिलित होने की इच्छा हो, वे निम्न पते पर सूचित करें :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

— पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की 61वीं मंगल जन्मजयन्ति प्रथम भाद्रपद कृष्णा दोज, सोमवार तारीख 5-8-74 को सोनगढ़ में हीरकजयन्ती के रूप में उत्साहपूर्वक मनाई जा रही है।

दसलक्षण-पर्यूषण पर्व

सोनगढ़ में पर्यूषण पर्व तारीख 20-9-74 तद्नुसार द्वितीय भाद्रपद शुक्ला पंचमी से प्रारंभ होकर भाद्रपद शुक्ला 14 सोमवार, तारीख 30-9-74 तक मनाया जायेगा। दो दसमी होने से पर्यूषण पर्व 11 दिन का होगा। सुगंधदशमी दूसरी दसमी के दिन (गुरुवार) को मनायेंगे।

विशेष धार्मिक-प्रवचनों के आठ दिन प्रतिवर्ष की भाँति प्रथम भाद्रपद कृष्ण 12, तारीख 15-8-74 गुरुवार से प्रथम भाद्रपद सुद पंचमी तारीख 22-8-74 गुरुवार तक रहेंगे।

'आत्मधर्म' के संबंध में—

आपका प्रिय मासिक पत्र आत्मधर्म प्रत्येक मास की 25वीं तारीख को पोस्ट किया जाता है। वार्षिक चंदा मात्र 4.00 चार रुपये है। कृपया अपना वार्षिक चन्दा मनीआर्डर से भिजवा देवें।

आत्मधर्म का नया वर्ष वैशाख मास से प्रारम्भ होता है और चैत्र मास में सभी ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो जाता है। आप किसी भी महीने से ग्राहक बनें; किंतु वैशाख मास से ग्राहक मानकर जितने पिछले अंक स्टाक में होंगे, उतने आपको भिजवा दिये जायेंगे।

आत्मधर्म की संपादन शैली में क्रांतिकारी परिवर्तन करने का समय आ गया है। भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव भी आ रहा है। आत्मधर्म की विशेष प्रगति एवं विशेष सुंदरता के लिये आपकी सूचनाओं तथा सहयोग का हम स्वागत करेंगे। आप आत्मधर्म में जो परिवर्तन चाहते हों, जो नवीनता चाहते हों, वह हमें निम्न पते पर सूचित करने का हार्दिक आमंत्रण है।

कृपया आप जो भी सूचना लिखें, स्पष्ट सुवाच्य अक्षरों में लिखें; क्योंकि हमारी मातृभाषा गुजराती होने से अस्पष्ट हिन्दी पढ़ने में तकलीफ पड़ती है। यदि टाईप कराके भेजे तो उसकी पहली प्रति भेजें। दूसरी, तीसरी प्रति न भेजें। अपना पता भी साफ-साफ लिखें। हम आपके सभी जरूरी पत्रों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। आजकल गुजराती एवं हिन्दी दोनों आत्मधर्म का संपादन-कार्य तथा गुजराती आत्मधर्म का लेखनकार्य अकेले को ही करना पड़ता है, इसलिये आप सब साधर्मीजनों के पूर्ण संयोग की अपेक्षा रखता हूँ।

आपका—

ब्रह्मचारी हरिलाल जैन-संपादक, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

—: धर्म-प्रभावना के समाचार :—

— **छिंदवाडा में** — शिक्षण-शिविर व धर्म-प्रभावना के समाचार गतांक में आपने पढ़े। छिंदवाडा की जैनसमाज अत्यंत जागृत समाज है, और धर्मप्रभावना के कार्य में सभी ने तन-मन-धन से सहयोग दिया है। बीस दिन तक दिन भर सुबह से रात तक धार्मिक प्रवृत्तियाँ चलती रहती थीं, जिससे मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के हजारों जिज्ञासुजन लाभ लेते थे। इस शिविर में आनेवाले अनेक विद्वान बंधुओं ने भी शंका-समाधान तथा प्रवचनों के द्वारा बहुत अच्छी प्रभावना की है। आये हुए सभी लोग अध्यात्म वातावरण से खूब प्रभावित हुए थे। भिन्न-भिन्न शिक्षण-कक्षाओं में 700 से अधिक जिज्ञासुओं ने लाभ लिया; प्रवचनों में तो करीब पाँच हजार

श्रोतागण लाभ लेते थे। महाराष्ट्र में तत्त्वज्ञान प्रचार के लिये ब्रह्मचारी दीपचन्दजी गोरे तथा ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर विशेष प्रयत्नशील हैं और उनके प्रयत्न से जागृति आ रही है। शिक्षण-शिविर के आयोजन की महान सफलता के लिये छिंदवाडा की समाज को धन्यवाद!

छिंदवाडा में शिक्षण-शिविर की महान सफलता से प्रभावित होकर सोलापुर की जैनसमाज ने अपने यहाँ भी शिक्षण-शिविर लगाने का प्रशस्त निर्णय किया है।

— **दाहोद में** — अष्टाह्निका पर्व में श्री सिद्धचक्रविधान एवं अध्यात्म-शिक्षणशिविर का कार्यक्रम आनंद-उल्लासपूर्वक समाप्त हुआ—जिसमें दिगम्बर जैनसमाज के सभी भाई-बहिनों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया, इस प्रसंग पर बाहर से भी अनेक विद्वान पधारे थे एवं अच्छी प्रभावना हुई थी।

— **खंडवा** — तारीख 11-6-74 से शिक्षण-शिविर चला; जिसमें शास्त्र-प्रवचन एवं तत्त्वाभ्यास में स्थानीय समाज के छोटे-बड़े सभी ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया। सोनगढ़ से विद्वान आये थे और अच्छी प्रभावना हुई थी।

— **उज्जैन** — मई-जून मास में 15 दिन का आध्यात्मिक कार्यक्रम रखा गया, जिसमें विद्वानों के प्रवचनादि में बहुत लोगों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया, तथा अच्छी प्रभावना हुई।

वढवाण शहर (सौराष्ट्र) में — नवीन दिगम्बर जिनमंदिर का शिलान्यास वढवाण निवासी श्री चन्दुलाल जगजीवन पारेख के हाथ से पिछले दिनों अषाढ़ शुक्ला अष्टमी के मंगल-दिन हर्षोल्लासपूर्वक हुआ। सोनगढ़ से पूज्य बहिनश्री-बहिन तथा अनेक मुमुक्षु इस अवसर पर वढवाण पधारे थे। शिलान्यास की मंगल विधि में दोनों बहिनों ने बड़े आनंदपूर्वक भाग लिया था। शिलान्यास की विधि श्री पंडित हिम्मतलाल जेठालाल शाह ने करायी थी। सेठश्री पोपटलाल मोहनलाला वोरा, श्री रमणीकभाई तलकशी तथा श्री चिमनलाल हिम्मतलाल आदि मुमुक्षुओं ने अच्छा सहयोग दिया था।

आत्मानुभव की उच्च बात

[उच्च होने पर भी हो सकती है और करने योग्य है]

कोई कहे कि आत्मा के अनुभव की यह बात बहुत गंभीर है,—ऐसा अनुभव तो न जाने किसे होता होगा!

तो कहते हैं कि हे भाई! गृहस्थाश्रम में स्थित जीव कर सकता है, इसलिये तुझसे भी हो सकता है—ऐसी यह बात है। अरे, तू जैन हुआ, जिनवर के मार्ग में आया, और भगवान द्वारा कहे हुए आत्मा का ज्ञान तुझे न हो—ऐसा कैसे हो सकता है? भगवान ने जो कुछ कहा, वह सब करने का सामर्थ्य तुझमें है। अपनी निजशक्ति को सम्हाले-इतनी ही देर है। आत्मा के अनुभव की बात बहुत उच्च है—यह ठीक है, परंतु वह तुझसे हो सके ऐसी है। उच्च है-इसलिये नहीं हो सकती, ऐसा नहीं है। इसलिये इस बात को श्रेष्ठ समझकर उसकी अधिक महिमा लाना और निरंतर प्रयत्न करना; परंतु उच्च है—ऐसा कहकर उसका प्रयत्न न छोड़ देना! बात उच्च है और अपने परम हित की है, इसलिये उद्यम से श्रद्धा-ज्ञान में लेने योग्य है। उच्च कहकर भुला देने जैसी नहीं है। अरे, आत्मा को समझने का ऐसा अमूल्य अवसर चूक मत जाना। गृहस्थदशा में स्थित चौथे गुणस्थानवाला जीव भी ऐसे आत्मा का अनुभव करता है, और वह जीव तत्त्वज्ञानी है, विचक्षण है, मोक्ष-साधना में चतुर है, विवेकी है, शास्त्रों में कहे हुए सिद्धसमान आत्मा को अंतर्दृष्टि में लेकर उसके अतीन्द्रिय आनंद का वेदन किया है। और ऐसे आत्मा को जो नहीं जानता, उसकी अन्य सब पढ़ाई व्यर्थ है, उसमें सार या हित नहीं, उसके द्वारा मोक्ष की साधना नहीं की जा सकती। अरे, आत्मा भव से न छूटे और आत्मा को मोक्षसुख का स्वाद न आये, तो वह सब करनी असार है, इसलिये उससे विमुख हो और जिसमें आत्मा का हित हो, वह कर।

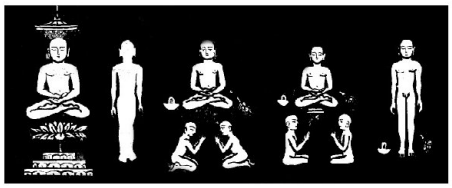

संसार से परे आनंद की ओर उन्मुख मुमुक्षु की दशा

हे मुमुक्षु भव्य आत्मा! इस संसार की अशांति से तू थक गया हो और अब किसी परम शांति का वेदन तू चाहता हो, तो उसके लिये तू संसार के राग से पृथक् होकर जहाँ शांति विद्यमान है, ऐसे अंतरतत्त्व का साथ कर। बारंबार उसका परिचय कर।

हे भव्य! जिस महान कार्य की साधना तीर्थंकरों ने की, उस महान कार्य की साधना तुझे करनी है, अतः अब तू लौकिक जनों की तरह प्रवर्तन न करना किंतु लोकोत्तर ऐसे अपूर्व भाव के साथ भगवान के मार्ग में आना।

हे भाई! अभी तक तू अशांति में रहा, सच्ची शांति का वेदन कभी नहीं किया, इसलिये मार्ग की साधना करने में विलंब हो तो तू निराश मत होना, शिथिल मत होना, परंतु महान उत्साहपूर्वक उसमें लीन रहना... अवश्य मार्ग की प्राप्ति होगी... मार्ग तो खुला हुआ ही है... आवश्यकता है केवल सच्ची भावना की।

चैतन्यभाव का बारबार परिचय करके मुमुक्षु जब अंतरआत्मा में मग्न हो जाता है, तब उसे कुछ ऐसा वेदन होता है कि अरे! हम इस संसार के जीव नहीं, ऐसी अशांति के बीच हम नहीं रह सकते, हम तो शांति से भरपूर किसी अन्य ही नगर के वासी हैं; पंचपरमेष्ठी भगवंत जहाँ निवास करते हैं, ऐसी अद्भुत नगरी ही हमारा वेश है। संसार से दूर-दूर... अंतर की गहराई में हमारा चैतन्यदेश है। इसप्रकार उस मुमुक्षु के परिणाम संसार से उदास होकर चैतन्य की शांति में प्रविष्ट हो जाते हैं; और उसमें प्रवेश करके अपने अद्भुत चैतन्यनिधान को देखने पर जो अपूर्व आत्मिक-आनंद, शांति और तृप्ति का वेदन होता है, उसकी क्या बात!

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)